E Content by:
Dr. Rekha Rani
Department of Sanskrit, B. D. College, Patna
Course – B. A. (Hons.) – Part-I
Book - रघुवंशम्, Paper – II
Topic – रघुवंश के प्रथम सर्ग का सारांश
Mob. No. 7970453282
E-mail: rekha171071@hotmail.com

रघुवंश के प्रथम सर्ग का सारांश

काव्य, विधा के अन्तर्गत रघुवंश को महाकाव्य की श्रेणी में रखा गया है। काव्य के प्रधानतया दो भेद किये गये हैं – ''दृश्यश्रव्यतवभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्''।

1. दृश्यकाव्य और
2. श्रव्यकाव्य

दृश्यकाव्य में नाटकादि आते हैं जिनका रंगमंच पर अभिनय किया जा सके, वहीं श्रव्यकाव्य वह है जिसे केवल सुना जा सके। श्रव्यकाव्य के तीन भेद हैं –

1. महाकाव्य
2. खण्डकाव्य और
3. मुक्तक काव्य

रघुवंश महाकाव्य के अन्तर्गत आते हैं। इस काव्य में महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान है। रघुवंश महाकाव्य की रचना महाकवि कालिदास द्वारा की गई है। महाकवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि तथा भारतीय संस्कृति के परिपोषक थे। भारत की संस्कृति इनके काव्यों में बोलती है। इनके काव्यों में पदलालित्य, रचनाचातुर्य, कल्पनाशक्ति, प्रवृति वर्णन एवं चरित्र–चित्रण अन्यतम् है। इनकी कवित्व शक्ति से प्रभावित होकर जर्मन विद्वान् गेटे ने भी इनकी भूरि–भूरि प्रसंशा की है। रघुवंश महाकाव्य '19' सर्गों में विभक्त है। इसमें राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक '27' राजाओं का आदर्श चरित्र वर्णित है। रघुवंश महाकाव्य का आरंभ राजा दिलीप के वर्णन से प्रारम्भ होता है।

कालिदास शैवभक्त थे। इसी कारण उन्होंने महाकाव्य की प्रस्तावना में शिव–पार्वती की वंदना इस प्रकार की है –

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

अर्थात् शब्द और अर्थ के समान सदा एकरूप संसार के माता–पिता भगवान शिव और पार्वती को वाणी और अर्थ की सिद्ध के लिए नमस्कार करता हूँ।

तदन्तर कवि रघुकुल का वर्णन करते हैं। भगवान सूर्य के पुत्र मनु सूर्य–वंश के प्रवर्तक हुए और उन्हीं के वंश में भव्यमूर्ति, बुद्धिमान, प्रजावत्सल् राजा दिलीप हुए। राजा दिलीप को सन्तान नहीं थी, अतः समस्त भूमण्डल के एकमात्र राजा होते हुए भी वे बड़े दुःखी रहा करते थे।

एक दिन राज्यभार अपने मन्त्रियों को सौंपकर महारानी सुदक्षिमा को साथ लेकर उन्होंने अपने कुलगुरू महर्षि वसिष्ठ के आश्रम को प्रस्थान किया। मार्ग में सुन्दर वन तथा कमलयुक्त तालाबों की शोभा देखते हुए तथा हरिणादि पशु–पक्षियों की मनोहर वाणी सुनते हुए और अपनी ग्रामीण प्रजा की भेंट को स्वीकार करते हुए सायंकाल में ऋषियों से भरे हुए गुरू के आश्रम में पहुँचे।

राजा के आश्रम में पहुँचते ही सभी ने अपने रक्षक राजा का सत्कार किया और राजा ने अरून्धती सहित गुरूजी के दर्शन किये तथा चरणस्पर्श कर गुरू का आर्शीवाद प्राप्त किया। कुशलक्षेम पूछने के बाद राजा ने सन्तान न होने के कारण अपना कष्ट गुरूजी से कहा। गुरूजी ने समाधि के द्वारा कारण जानकार राजा से कहा–कि एक समय स्वर्ग से लौटते हुए तुमने कल्पवृक्ष की छाया में बैठी हुई कामधेनु की प्रदक्षिणा आदि पूजा नहीं की थी। उसी ने तुम्हें श्राप दे दिया और वह कामधेनु इस समय वरूण के एक बड़े यज्ञ के लिए पाताल गई है, अतः तुम कामधेनु की सन्तान नन्दिनी जो कि यहाँ है उसी की सेवा करो। नन्दिनी भी कामधेनु के समान प्रसन्न होनेपर मनोरथ को पूर्ण करनेवाली है। अतः हे राजन्, तुम जंगली कन्द, मूल, फल खाकर नन्दिनी के चलने पर चलना बैठने पर बैठना और इसके जल पीने प जल पीना और तुम्हारी धर्म–पत्नी भी नियमपूर्वक प्रातः चन्दनपुष्पादि से इस नन्दिनी की पूजा करके तपोवन की सीमा तक इसका अनुगमन करे। इस प्रकार सेवा में तत्पर रहो जब तक

कि यह प्रसन्न न हो। यह कहकर वसिष्ठजी ने गो–सेवारूपी व्रत की विधि का उपदेश देकर राजा को विश्राम करने की आज्ञा दी और राजा ने गुरूजी की बताई हुई पर्णकुटी में रात बिताई।